जैन राम-कथा की विशिष्ट परम्परा

डॉ० योगेन्द्रनाथ शर्मा 'अरुण'

रामकथा जैन कवियों द्वारा विशेष सम्मान के साथ गृहीत हुई है। बौद्ध धर्मानुयायियों ने राम-विषयक मात्र 'तीन' जातक लिखे, किन्तु जैन धर्मानुयायियों ने अत्यन्त व्यापक रूप में संस्कृत, प्राकृत एवं अपभ्रंश भाषाओं में 'राम-कथा' को निबद्ध किया है, जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि वाल्मीकि से आरम्भ होकर रामकथा सबसे अधिक विस्तार के साथ 'जैन साहित्य' में ही अपनायी गयी। अपभ्रंश में तो राम एवं कृष्ण के पावन चरित्रों को केवल जैन कवियों द्वारा ही कथा-ग्रन्थों का आधार बनाया गया, तथा यह तथ्य विशेष उल्लेखनीय है कि प्रबन्ध-शैली में लिखा गया अपभ्रंश का पहला महाकाव्य 'पउमचरिउ' है, जिसके प्रणेता महाकवि स्वयंभूदेव जैन मतानुयायी थे और 'यापनीय संघ' से सम्बद्ध थे।

जैन-साहित्य में 'त्रिषष्टि शलाकापुरुषों' का स्थान सर्वोच्च है, जिनमें २४ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्ती, ९ बलदेव, ९ वासुदेव तथा ९ प्रतिवासुदेव माने गये हैं। जैन-मान्यता के अनुसार निरन्तर गतिमान सृष्टि-चक्र की प्रत्येक 'उत्सर्पिणी' तथा 'अवसर्पिणी' में इनका जन्म हुआ करता है। प्रत्येक 'बलदेव' का समकालीन एक 'वासुदेव' और उसका विरोधी 'प्रतिवासुदेव' होता है। वासुदेव अपने अग्रज बलदेव के साथ मिलकर प्रतिवासुदेव से युद्ध करके उसका वध करते हैं और इसी 'पाप' के कारण वासुदेव 'मरकर' नरक में जाते हैं और अनुज के शोक में बलदेव 'जैनधर्म की दीक्षा' लेकर अन्ततः मोक्ष प्राप्त करते हैं। जैन मतानुसार 'राम' वर्तमान अवसर्पिणी के त्रिषष्टि शलाकापुरुषों में ८वें बलदेव के रूप में समादृत हैं और लक्ष्मण तथा रावण क्रमशः ८वें वासुदेव और ८वें प्रतिवासुदेव हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि जैन धर्म एवं संस्कृति में 'राम' को महत्त्वपूर्ण स्थान देकर हिन्दू-परम्परा का पोषण किया गया है।

राम का नाम 'पद्म' क्यों ?

प्राकृत एवं अपभ्रंश में रचित राम-विषयक कथा-ग्रन्थों का नाम संस्कृत की परम्परा के अनुसार 'रामायण' आदि नहीं मिलता, प्रत्युत प्रत्येक भाषा में रचित जैन-रामकथा में 'राम' का नाम 'पद्म' (पउम) है और जैन रामायण का नाम तदनुसार 'पउम-चरिउ' (पद्म-चरित) है। ऐसा एक 'विशिष्ट' कारण से करना पड़ा है। ६३ शलाकापुरुषों के क्रम में ९वें बलदेव हैं 'बलराम' तथा वासुदेव एवं प्रतिवासुदेव हैं क्रमशः कृष्ण एवं जरासंध। चूंकि ८वें बलदेव 'राम' हैं तथा ९वें बलदेव हैं 'बलराम', अतः नाम-साम्य से सम्भावित गलतफहमी से बचने के कारण ही जैन कवियों ने 'रामचरित' को 'पउमचरियं' (पद्मचरितं) कहा है।

इस विशिष्ट परिवर्तन से जैन राम-कथा का रूप प्रचलित हिन्दू रामकथा से पूर्णतः पृथक् हो गया है। यहां राम के द्वारा रावण का वध नहीं होता, प्रत्युत लक्ष्मण के हाथों रावण की मृत्यु होती है तथा राम जैन धर्म की दीक्षा ले लेते हैं। स्वाभाविक है कि राम के 'शील-शक्ति-सौन्दर्य' वाले रूप की अवधारणा जैन राम-काव्यों में नहीं हो सकी; प्रत्युत उन्हें 'सामान्य मानव' के रूप में 'सौन्दर्य' का ही अधिष्ठाता दिखाया गया है। यही कारण सम्भवतः जैन राम-कथा के प्रचार-प्रसार में भी बाधक बना होगा, क्योंकि 'मानस' की लोकप्रियता के मूल में राम का शील-शक्ति-सौन्दर्य वाला रूप है।

जैन कवियों को 'राम-कथा' अत्यन्त प्रिय रही है और इसे श्वेताम्बर एवं दिगम्बर, दोनों ही मतावलम्बियों ने व्यापक रूप से अपनाया है। जैन राम-कथा की दो धाराएं मिलती हैं—(१)—महाकवि विमलसूरि प्रणीत 'पउमचरियं' की परम्परा, तथा (२)—गुण-भद्राचार्य प्रणीत 'उत्तरपुराण' की परम्परा। महाकवि विमल सूरि ने प्राकृत में अत्यन्त विस्तार के साथ 'रामकथा' को लिया, जिसका संस्कृत छायानुवाद रविषेणाचार्य ने 'पद्मचरितं' के नाम से किया है। गुणभद्र की परम्परा अधिक नहीं चल सकी और अपभ्रंश में महाकवि पुष्प-दन्त के पश्चात् कोई समर्थ महाकवि इस परम्परा को लेकर नहीं चल पाया।

जैन साहित्य में अनेक विश्रुत कवियों की कृतियां संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश में उपलब्ध हैं, जिनमें रामकथा को जैनधर्म, दर्शन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवं संस्कृति के प्रकाशन का आधार बनाया गया है। कतिपय श्रेष्ठ कृतियां निम्नोक्त हैं—

कृति एवं कृतिकार	रचना-काल	भाषा
१. विमलसूरि-कृत पउमचरिय	(तीसरी शती)	—प्राकृत भाषा
२. रविषेणाचार्य-कृत पद्म-चरित	(६६० ईसवी)	—संस्कृत
३. स्वयंभूदेव-कृत पउमचरिउ	(८वीं शती)	—अपभ्रंश
४. हेमचन्द्र-कृत जैन रामायण	(१२वीं शती)	—संस्कृत
५. जिनदास-कृत राम पुराण	(१५वीं शती)	—संस्कृत
६. पद्मदेव विजयगणि-कृत रामचरित	(१६वीं शती)	—संस्कृत
७. सोमसेन-कृत रामचरित	(१६वीं शती)	—संस्कृत

उपर्युक्त विवरणिका से स्पष्ट है कि लगभग १५ सौ वर्षों तक जैन कवियों द्वारा 'राम-कथा' का व्यापक प्रचार-प्रसार हुआ है। इतना ही नहीं, अपभ्रंश में रचित महाकवि स्वयंभूदेव कृत 'पउमचरिउ' का तो महाकवि तुलसी-प्रणीत 'रामचरितमानस' पर विशद प्रभाव राहुल सांकृत्यायन, डा० रामसिंह तोमर, डा० नामवरसिंह, डा० 'अरुण' एवं डा० संकटाप्रसाद आदि ने अपने शोध-ग्रन्थों में सिद्ध किया ही है, जो वस्तु एवं शिल्प दोनों के ही पक्षों पर बहुत गहरा प्रभाव है, तुलसी द्वारा जैन परम्परा के ज्ञापन एवं ग्रहण का सूचक है।

जैन साहित्य में 'राम' का रूप

प्रायः सभी जैन कवियों ने 'राम' को जैन धर्मावलम्बी के रूप में चित्रित किया है। महाकवि स्वयंभूदेव ने राम को दशरथ एवं उनकी पटरानी 'अपराजिता' का पुत्र माना है। इन काव्यों में राम के 'ब्रह्मत्व' का तो प्रश्न ही नहीं उठता; प्रत्युत वे 'सहज मानवीय पात्र' के रूप में चित्रित किए गये हैं। यहां राम के चरित्र की सबसे मुख्य विशेषता उनके आचरण की शुद्धता, सरलता, निष्कपटता एवं निर्भीकता रही है। अत्यन्त वीर एवं पराक्रमी राम में अभिमान नहीं है। बल्कि उन्हें सर्वत्र ही त्याग, विनय तथा सौम्यता जैसे दिव्य सद्गुणों से मण्डित दिखाया गया है। प्रथम तीर्थंकर 'ऋषभ जिन' में राम की दृढ़ आस्था दिखाकर जैन कवियों ने सहज ही 'परम जिन' का महत्त्व सर्वोपरि रखा है। राम के माध्यम से 'अहिंसा' के सिद्धान्त को जैन साहित्य में अक्षुण्ण रखा गया है और उन्हें धीरोदात्त नायक के रूप में रखकर 'सम्मान' प्रदान किया है। राम-कथा को 'वद्धमान-मुह-कुहर विणिग्गय' कहकर विशुद्ध रूप से जैन.धर्म के सांचे में ढाल दिया गया है। जैन-रामकथा में राम-चरित के सभी प्रमुख पात्र 'जिन-वन्दना' करते हैं और जैनत्व की दीक्षा ग्रहण करते हैं।

जैन धर्म एवं दर्शन की पीठिका

प्रत्येक युग में राम-कथा तत्कालीन धर्म, दर्शन एवं संस्कृति के स्वरूप को व्यंजित करने का सबलतम माध्यम बनाकर प्रस्तुत की जाती रही है। इसी क्रम के अनुसार प्राकृत एवं अपभ्रंश में रचित राम-काव्यों में कवियों ने आरम्भिक मंगलाचरण के रूप में आदि तीर्थंकर 'ऋषभ जिन' एवं अन्तिम तीर्थंकर 'वर्धमान महावीर' के विशिष्ट सम्मान सहित सभी तीर्थंकरों की वन्दना की है। यदि विमल सूरि तथा रविषेणाचार्य ने भगवान् महावीर की वन्दना से काव्यारम्भ किया है, तो महाकवि स्वयंभूदेव ने ऋषभ जिन की अभ्यर्थना की है—

णमह णव-कमल-कोमल-मणहर-वर-वहल-कंति-सोहिल्लं।
उसहस्स पाय-कमलं स-सुरासुर वन्दियं सिरसा।।

"अर्थात् मैं नवकमल से कोमल, सुन्दर तथा श्रेष्ठतम कान्ति से युक्त, देवों तथा असुरों द्वारा वन्दित भगवान् ऋषभ के चरण-कमलों में सिर झुकाता हूं।"

वद्धमाण-मुह-कुहर विणिग्गय। राम कहा-णइ एह कमागय।।

"और वर्धमान के मुख-कुहर से निकलकर यह राम-कथा रूपी नदी चली है।" इस उद्धरण से पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है कि जैनियों द्वारा राम-कथा को पूरी तरह जैनत्व से जोड़ा गया है।

अपभ्रंश भाषा के वाल्मीकि महाकवि स्वयंभू ने 'पउमचरिउ' में जैन धर्म की मान्यताओं के आचारगत एवं विचारगत दोनों ही पक्षों का सम्यक् दिग्दर्शन कराया है। स्वयंभूदेव जैन धर्म की 'यापनीय शाखा' से सम्बन्धित थे, यह उल्लेख महाकवि पुष्पदन्त ने "सयंभु: पद्दडी-बद्धकर्त्ता आपली संघाय:" कहकर किया है। श्वेताम्बर तथा दिगम्बर धाराओं के बीच 'समन्वय' कराने वाली 'यापनीय शाखा' इन दोनों की उत्पत्ति के ६०-७० वर्ष के बाद हुई थी, जिसमें स्वयंभू हुए, अतः उन्होंने 'सहिष्णुता' एवं 'समन्वय' का मार्ग अपनाया था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन दर्शन के सात तत्त्वों—जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा तथा मोक्ष—का निरूपण 'रामकथा' के माध्यम से हुआ है। आदि तीर्थंकर द्वारा 'कैवल्य' प्राप्त करने के प्रसंग में आत्मसंयम, आत्मानुशासन, आत्मनिग्रह, साधना एवं त्याग आदि का महत्त्व बताया गया है। स्वयंभू जहां अवसर पा जाते हैं, जैन धर्म के तत्त्व की चर्चा कर देते हैं या किसी पात्र से 'जिनवन्दना' या ऋषि-संघ से उपदेश करा देते हैं।

सीता-हरण के पश्चात् रावण को मन्दोदरी के माध्यम से स्वयंभू देव जो कुछ कहलाते हैं, उसमें जैनत्व का सार निहित है—

"जिणवर-सासणे पंच विरुद्धइ। दुग्गइ जाइ णिन्ति अविसुद्धइ॥
पहिलउ वहु छज्जीव-णिकायहुं। वीयउ गम्मइ मिच्छावायहुं॥
तइयउ जं पर-दव्वु लइज्जइ। चउथउ पर-कलत्तु सेविज्जइ॥
पंचमु णउ पमाणु घरवारहँ। आयहिं गम्मइ भव-संसारहँ॥

"जिन शासन में पांच बातें वर्जित हैं, प्रथम छः निकायों के जीवों की हत्या, दूसरी मिथ्यापवाद लगाना, तीसरी परद्रव्यापहरण, चौथी पर-स्त्रीगमन तथा पांचवीं अपने गृहद्वार का अपरिमाण। इनसे दुर्गति और संसार के कष्ट मिलते हैं।"

उपर्युक्त उद्धरणों द्वारा यह सुस्पष्ट हो जाता है कि जैन कवियों ने 'राम-कथा' को अपने धर्म, दर्शन तथा संस्कृत आदि के प्रकाशन का समर्थतम माध्यम बनाकर ग्रहण किया।

वस्तुतः राम का पावन चरित्र देश-काल की सीमाओं से सदा अप्रभावित ही रहा और संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश तथा हिन्दी के साथ असमिया, बंगला, उड़िया, तमिल एवं कन्नड़ आदि भाषाओं के कवियों ने 'राम-कथा' को अपने-अपने मतों के प्रचार-प्रसार का माध्यम बनाया है। यह विलक्षण बात है कि 'राम-कथा' का विस्तार कृष्ण-कथा की अपेक्षा बहुत अधिक हुआ है और जैन साहित्य में तो कवियों ने रामकथा को अत्यन्त श्रद्धा एवं आदर के साथ ग्रहण किया है। डा० कामिल बुल्के के शब्दों में—"बौद्धों की भांति जैनियों ने भी रामकथा अपनायी है। अन्तर यह है कि जैन कथा-ग्रन्थों में हमें एक अत्यन्त विस्तृत राम-कथा-साहित्य मिलता है।"

जैन साहित्य में राम-कथा के स्वरूप को अभी शोधकर्त्ताओं ने कम देखा है। आवश्यकता इस बात की है कि संस्कृत एवं हिन्दी के मध्य सेतु बनने वाले, प्राकृत-अपभ्रंश में उपलब्ध विस्तृत राम-कथा-साहित्य का अनुशीलन-प्रकाशन हो। इसके लिए प्राचीन जैन ग्रन्थागारों की धूल छाननी पड़ेगी। देखें, हम धूल में छिपे दिव्य ग्रन्थ-रत्नों का उद्धार कब कर पाते हैं!

कन्नड़-साहित्य में रामकथा-परम्परा

युग-युग से भारतीय जीवन को राम व कृष्ण के कथा साहित्य ने जितना प्रभावित किया है, उतना शायद ही किसी साहित्य ने किया हो। यद्यपि राम तथा कृष्ण-कथाओं का उद्गम और विकास पहले-पहल संस्कृत-साहित्य में हुआ था, तो भी अन्य भारतीय भाषा-साहित्यों में उनकी व्याप्ति कुछ कम नहीं हुई है। तमिल-कन्नड़ जैसी आर्येतर भाषाओं की समृद्धि में इन अमर चित्रों की देन इतनी है कि यदि इन साहित्यों में से राम और कृष्ण-कथा सम्बन्धी साहित्य को अलग कर दिया जाये, तो शेष बचा साहित्य सत्त्वहीन हो जायेगा। कन्नड़ में साहित्य का निर्माण ईसा की लगभग ७वीं शताब्दी से शुरू होता है, फिर निरन्तर उत्कर्ष को प्राप्त होता है। तब से आज तक कन्नड़ में राम-कथा संबंधी साहित्य का सृजन बराबर जारी है। आरंभिक काल में विशेषतः जैन धर्मावलम्बी ही साहित्य-निर्माता रहे। क्योंकि उस समय कर्नाटक में जैन धर्म का विशेष प्रचार हो चला था।

१८वीं शताब्दी के लगभग वैदिक धर्म का पुनरुत्थान हुआ। उसके साथ ही वैदिक मतावलम्बियों ने साहित्य-निर्माण की ओर भी ध्यान दिया। लेकिन संस्कृत-प्राकृत-अपभ्रंश साहित्य के कन्नड़-रूपान्तर का श्रेय जैन कवियों को ही जाता है। जैन कवियों ने प्रायः दो प्रकार के काव्यों की रचना की—१. धार्मिक काव्य, २. लौकिक काव्य। लौकिक काव्यों में वैदिक साहित्य की कथावस्तुओं का अन्तर्भाव इस कौशल से सम्पन्न हुआ कि संस्कृत भाषा, शैली, रचना-वैचित्र्य, वस्तु-विधान आदि के वैभव से कन्नड़-भाषा तथा साहित्य परिपुष्ट व सत्त्वशाली बना।

(—राष्ट्रकवि 'मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन-ग्रंथ' में मुद्रित श्री हिरण्मय के लेख से उद्धृत)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org